कहता हूं वक्त मिलेगा
जिसमें जमा हुआ यह वातावरण हिलेगा
और फिर दूर नहीं है वह दिन
तुम तब तक बेशक बचोगे
भय की जगह विश्वास बोओगे
उत्साह रचोगे

तब भय बोया है जिन्होंने
उतना बाहर नहीं
जितना खुद अपने भीतर
वे तुम्हें समझने की दशा में आ जाएंगे

तय हमें-तुम्हें सिर्फ इतना करना है
कि निर्भयता फैलाएंगे
निर्भयता गाएंगे
उत्साह भरेंगे देश-भर मनों में
उत्सव मनाएंगे वनों में
जंगल में मंगल करेंगे
जान डालेंगे अधमरी
तमाम हस्तियों में
बदल दी गयी बस्तियों में
इकट्ठा होकर

मगर तय है कि यह
उदास होने से नहीं होगा
निराश होने से तो होगा ही नहीं
हिम्मत और प्रसन्नता से
छोटे-छोटे कामों में
जुट जाने से होगा

लोगों के दुख दर्द पर
हंसते-हंसते
लुट जाने से होगा!

पन्द्रह अक्तूबर सन् 1976 को लिखी गई यह कविता आज सन् 2011 में ट्यूनीशिया, मिस्र, यमन, लीबिया, सीरिया, ईरान, हैती, गिनी बिसाऊ, बेहरीन और न जाने कहां-कहां घट रही घटनाओं की पृष्ठभूमि में दुबारा पढ़ी जा सकती है।

अस्सी चूल्हों का गणतंत्र

अतुल कुमार सिंह

उड़ीसा का नयागढ़ जिला। ग्राम कोस्का। 5 मार्च 2011 का दिन। हम बाहर से गए करीब 25-30 लोग गांव के आंगनवाड़ी केंद्र के बरामदे में बैठे थे। गांव के 8-10 बुजुर्ग भी सामने बैठे थे। दीवार पर उड़िया में घंटूरी जंगल सुरक्षा कमेटी का बोर्ड लगा है। जंगल के बीच यह गांव उड़ीसा की राजधानी भुवनेश्वर से करीब 100 किलोमीटर पश्चिम की ओर है। यहां पहुंचने के लिए तीन-चार किलोमीटर पैदल चलना पड़ता है। जंगल का इलाका शुरू होने के मुहाने पर बसे गांव क्रीदासपुर के दुर्गा मंदिर में आंचलिक हाथी मुंडा जंगल सुरक्षा कमेटी का एक और बोर्ड लगा है। यहां से आगे जाने की इजाजत जंगल के इन गांवों की कमेटी से लिए बिना संभव नहीं। कारण यह है कि गांववालों ने अपनी कमेटी बनाकर जंगल सुरक्षा का जिम्मा खुद संभाल लिया है।

दिल्ली की संस्था सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायर्नमेंट की बैठक में हिस्सा लेने पहुंचे देश के विभिन्न हिस्सों से आए हम लोग क्रीदासपुर के पास ही बस छोड़ पैदल आगे बढ़ रहे थे। नेतृत्व संस्था के साथी श्री रिचर्ड महापात्र कर रहे थे। वे चौदह साल पहले भी यहां आ चुके हैं और मूल रूप से उड़ीसा के ही रहने वाले हैं। उनके साथ हैं इस संस्था के सुपर्णो बनर्जी और सुश्री पापिया समझदार। आज से 40 साल पहले इस गांव में जंगल लगभग कट चुके थे। वन विभाग और लकड़ी माफिया की सांठ-गांठ के कारण यहां के आसपास के पहाड़ नंगे हो चुके थे। लेकिन 40 साल पहले गांवों द्वारा खुद जंगल की कमान संभालने के बाद से अब इलाके में नए पेड़ों के जंगल लहलहाते देखे जा सकते हैं। कोस्का गांव में करीब 80 चूल्हे जलते हैं, यानी 80 परिवार हैं।

गांव में जंगल की जन सुरक्षा की शुरुआत करने वाले 58 वर्षीय विश्वनाथ बराल हमें अपनी पूरी कहानी सुनाते हैं। रिचर्ड दुभाषिया की भूमिका में हैं। बराल बताते चलते हैं। 40 साल पहले जब वे युवा हुए, आसपास के सारे जंगल कट चुके थे। इलाके का मौसम भी बदल चला था। बारिश आदि का समय

अस्त-व्यस्त हो रहा था। बराल ने 1970 में 1,000 हेक्टेयर जंगल भूमि की सुरक्षा का जिम्मा लिया। धीरे-धीरे इसके साथ आसपास के 16 और गांव जुड़ गए। इस तरह सुरक्षा का दायरा भी 1,000 हेक्टेयर से बढ़कर 10,000 हेक्टेयर हो गया। लेकिन फिर ऐसा भी हुआ कि बाद के दिनों में एक-एक कर दूसरे सारे गांव इस कमेटी को छोड़ कर चले गए। लेकिन कोस्का गांव आज भी इस काम को पूरी निष्ठा से कर रहा है।

जंगल कैसे बचाते हैं? जैसे पालते हैं हम बच्चों को। इस इलाके में एक शब्द प्रचलित है– ठेंगापाली। ठेंगा माने डंडा और पाली माने बारी। यानी ठेंगा की बारी के मुताबिक जंगल की रक्षा। होता यह है कि बांस का एक ठेंगा बनाकर रखा जाता है। यह ठेंगा टेढ़े-मेढ़े पतले बांस का ही होता है। इसे कोई चुराता नहीं, वक्र से सभी डरते हैं। इसलिए वक्र डंडे को कोई ले नहीं जा सकता। अब एक परिवार के पास यह ठेंगा है तो उस परिवार का एक सदस्य रात-दिन जंगल की रखवाली में रहेगा। ठेंगा लिए हुए। जब उस परिवार की बारी समाप्त होने वाली है तो वह इस ठेंगे को पड़ौसी के दरवाजे पर रख देता है। पड़ौसी ठेंगा देख समझ जाता है कि अब उसके परिवार की बारी आ गई है। इस तरह बिना बोले, बिन सुने यह ठेंगा एक घर से दूसरे घर जंगल रखवाली का संदेश या कहें आदेश सुनाता चलता है और ले चलता है पूरी परंपरा। समाज का ताना-बाना और संपर्क का सूत्र।

इस इलाके में एक शब्द प्रचलित है– ठेंगापाली। ठेंगा माने डंडा और पाली माने बारी। यानी ठेंगा की बारी के मुताबिक जंगल की रक्षा। होता यह है कि बांस का एक ठेंगा बनाकर रखा जाता है। यह ठेंगा टेढ़े-मेढ़े पतले बांस का ही होता है। इसे कोई चुराता नहीं। वक्र से सभी डरते हैं। इसलिए वक्र डंडे को कोई ले नहीं जा सकता। अब एक परिवार के पास यह ठेंगा है तो उस परिवार का एक सदस्य रात-दिन जंगल की रखवाली में रहेगा।

इतना बड़ा यह काम भला कैसे शुरू हुआ था? गांव में जंगल रक्षा कमेटी का गठन बिलकुल सहज लेकिन आश्चर्यजनक तरीके देखकर बड़ी से बड़ी गणतांत्रिक व्यवस्था भी दांतो तले उंगली दबा ले। इसका पूरा ढांचा इस गांव के निवासियों ने अपनी परंपरा से, अपनी खुद की बुद्धि से तैयार किया है। गांव में जितने चूल्हे, कमेटी में बस उतने प्रतिनिधि। हर चूल्हे से एक सदस्य गांव की सभा की कमेटी में। पर ग्रामसभा की आमसभा में हर बालिग स्त्री-पुरुष सदस्य हैं। है न चौंकाने वाली बात। न कोई चुनाव, न कोई गुटबंदी, न कोई प्रतिद्वंद्विता। हर चूल्हे से एक सदस्य तो कमेटी में आ गए।

लेकिन हर काम में हर कोई दक्ष और जानकार नहीं। तो जो जिस काम में निपुण, उसे उसी काम का जिम्मा। इस तरह उपसमितियां भी बन गईं।

अब लघु वनोपजों व अन्य वनोपजों का बंटवारा करना है। इसमें सबसे प्रमुख है बांस, महुआ, बेंत और साल व अन्य लकड़ियां। खेती का महीना शुरू होने वाला है। उपलब्धता यहां भी आधार बनती है। कोस्का में प्रति परिवार के हिसाब से हर साल 20 बांस का उत्पादन हो जाता है। तो हर परिवार को हर साल 20 बांस मिल जाना है। साल का पेड़ कहीं गिरा या दूसरी लकड़ी सूखी मिलती है। उसका क्या हो? खेती में सबसे महत्वपूर्ण है हल। हल का लकड़ी वाला हिस्सा जिसे लंगल कहा जाता है, हर तीन चार साल बाद खराब हो जाता है, या घिस जाता है। लांगल संस्कृत नाम है। हिन्दी में हल। भगवान कृष्ण के बड़े भाई बलराम का प्यारा कृषि उपकरण। हल को साथ रखने के कारण बलराम लांगली भी कहलाते हैं। हर किसान को समय-समय पर उसे बदलना है। साल में एक वृक्ष भी गिरा तो उसमें से 10-15 लंगल के बराबर लकड़ी निकल आएगी। फिर हर साल सब किसानों को तो लंगल चाहिए नहीं। तो जिसे चाहिए, उसे मिल जाता है। हां, इतना है कि जो चीजें सबको नहीं मिल सकतीं और जिसकी जरूरत सबको नहीं, कुछ लोगों को ही होती है, तो वैसी चीजों की नीलामी होती है। उस नीलामी से प्राप्त पैसे को गांव के सारे परिवारों के बीच बराबर-बराबर बांटा जाता है। हमें विश्वनाथ बराल बताते हैं कि इसी तरीके से पिछले साल 51,000 रुपए की लकड़ी बेची गई। और इसे गांव के परिवारों में बराबर हिस्से में बांट दिया गया था। गांव में धान को रखने के लिए साल की लकड़ी भी लगभग सभी परिवारों को हर साल जंगल से मुफ्त प्राप्त हो जाती है।

हल का लकड़ी वाला हिस्सा जिसे लंगल कहा जाता है, हर तीन चार साल बाद खराब हो जाता है, या घिस जाता है। लांगल संस्कृत नाम है। हिन्दी में हल। भगवान कृष्ण के बड़े भाई बलराम का प्यारा कृषि उपकरण। हल को साथ रखने के कारण बलराम लांगली भी कहलाते हैं।

जंगल से प्राप्त होने वाली वस्तुएं कई प्रकार की हैं। इनमें लघु वनोपजों की संख्या भी ज्यादा है और मात्रा भी। लघु वनोपजों में बांस, बेंत, तेंदूपत्ता, महुआ आदि प्रमुख हैं। इनसे काफी आमदनी होती है। कोस्का गांव के निवासी इन वनोपजों की सावधानी से रखवाली करते हैं, ईमानदारी से संग्रहण करते हैं और फिर इनका निष्पक्ष समान वितरण गांव के परिवारों के बीच करते हैं। बांस साल में एक बार काट कर बेचा जाता है या गांव की जरूरत के मुताबिक उसे परिवारों

में वितरित किया जाता है। महुआ का बीज इकट्ठा करने से गांव वालों को काफी मात्रा में तेल मिल जाता है। सूखे पत्ते बटोरने पर कोई रोक नहीं।

कोस्का गांव की इस बिलकुल अपनी व्यवस्था में, जैसा कि ऊपर शुरू में ही कहा गया है, अन्य 16 गांव शामिल हो गए थे। लेकिन कालांतर में ये गांव धीरे-धीरे इस कमेटी से अलग होते गए। आज केवल कोस्का गांव ही इस व्यवस्था को चला रहा है। दूसरे गांव के लोग भी तो जंगल जाएंगे ही। फिर उनके साथ यह समिति कैसे निपटेगी? उन लोगों के साथ जंगल जाने पर कैसा बर्ताव होना चाहिए। कोस्का गांव की कमेटी ने इसकी भी बड़ी खूबसूरत व्यवस्था बना ली है।

दूसरे गांव के लोग जो इस कमेटी के सदस्य नही हैं, जंगल में बिना हथियार के जा सकते हैं। हालांकि इनका वनोपज पर अधिकार नहीं है, लेकिन जंगल के भीतर जो गिरा हुआ उत्पाद मिले, उसे वे ले जा सकते हैं। इनमें बांस, बेंत, हड्डा, पाडा, टोल, तेंदूपत्ता, महुआ, पत्ता या अन्य लकड़ियां भी शामिल हैं। लेकिन वे लोग किसी भी उपज को काट नहीं सकते, तोड़ नहीं सकते।

कोस्का गांव के लोगों और इसकी कमेटी ने देशी राज्य व्यवस्था को चुनौती दिए बगैर ही अपनी खुद की दंड संहिता भी बना रखी है। यह दंड संहिता किसी कोड या संविधान से नहीं उपजी है, बल्कि उनकी अपनी परंपरा से गहरे जुड़े संस्कारों के कारण ढली है। इसका स्रोत उनके समझदार पूर्वजों, वनवासियों के रहवास की व्यवस्था में छिपा है। इस संरक्षण प्रणाली के जनक शहरों के उच्च संस्थानों से प्रशिक्षित तकनीकी लोग नहीं हैं। यह तो अनौपचारिक तौर पर स्वकीय पहल से बनाई गई है। पीढ़ियों की स्मृतियों और सतत चल रही व्यवस्था से पैदा हुए परिणाम, अनुभव इनके मानस पटल पर साफ-साफ लिखे हैं। पर इस संरक्षण प्रणाली को संजोने से ही काम नहीं चलेगा। इसकी रक्षा भी तो होनी चाहिए। और इसके लिए होना चाहिए किसी तरह का आत्मीय दंड प्रावधान भी। सरकार, कोर्ट-कचहरी के चक्कर लगाना केवल दुरूह और खर्चीला ही नहीं है, उसका परिणाम भी न्याय के पक्ष में, गांव के पक्ष में, संरक्षण के या सबके हित में हो– यह भी तो नहीं होता। इसलिए इनकी अपनी गांव स्तर की दंड प्रणाली है जो मानवीय भी है और दंडात्मक भी।

कमेटी के कानून तोड़ने वाले सदस्य चाहे वे गांव के हों या दूसरे गांव के, उनके व्यवहार पर गांव की कमेटी में ही विचार किया जाता है। उनके द्वारा किए अपराधों को समाज के अनुभवी बुजुर्ग परखते हैं और फिर उसी के अनुरूप दंड की व्यवस्था की जाती है। ज्यादा गंभीर अपराध है तो गांव से निष्कासन भी हो सकता है। जंगल के पेड़ काट लेने पर पकड़े जाने पर जुर्माना वसूला जाता है। गांव के स्तर पर अन्य तरह की छोटी से बड़ी सजा तक भी दी जाती है।

वनों के मामले में चिंता रखने वाले लोग जानते ही हैं कि देश भर में पहली जनवरी 2008 से 'अनुसूचित जनजाति और अन्य परंपरागत वन निवासी (वनाधिकार संरक्षण) अधिनियम 2006 लागू हुआ है। इसके बाद इस इलाके के कोस्का समेत लगभग सभी गांवों में 16 से 13 मार्च 2008 के बीच वनाधिकार समितियां बनी थीं। यों ये समितियां सरकारी अमलों की देखरेख में बनी थीं। कोस्का के लोगों ने 16 मार्च को समिति बनाकर सब डिवीजनल स्तर पर 18 मार्च 2009 को अपने वन क्षेत्र का सामुदायिक दावा बाकायदा कर दिया। लेकिन सरकारी लालफीताशाही का दबदबा बरकरार रहा। इसका उदाहरण है कि सब डिवीजनल स्तर से इनका दावा वापस आ गया। इस टिप्पणी के साथ कि यह जंगल की जमीन नहीं है। यह तो पहाड़ी जमीन है यानी राजस्व ग्राम। सरकारी स्तर पर अपने आप में विरोधाभास सतह पर आ गया। अनुसूचित जाति/जनजाति विभाग ने कहा कि यह जंगल की जमीन है। फिर 18 मार्च 2009 को विशेष ग्रामसभा का आयोजन किया गया, जिसमें जिला कल्याण अधिकारी उपस्थित हुए। लेकिन अब तक इस पर कोई ठोस पहल नहीं हो सकी है।

यहां एक ओर ग्राम की अपनी व्यवस्था है जो सदियों से बिना किसी व्यवधान के चली आ रही है और कोस्का में आज भी व्यवस्थित ढंग से काम कर रही है। दूसरी ओर हमारी आधुनिक राज्य व्यवस्था द्वारा लागू तंत्र है जो नौकरशाही के पैरों तले कुचला जाकर और विद्रूप रूप में जनता के सामने आ रहा है। कोस्का में वनाधिकार कानून के लागू होने के बाद उस पर दावे को लेकर इसी तंत्र को देखा जा सकता है। जंगल और गांवों में निवास करने वाले नागरिकों के लिए कोस्का की अपनी पहल से निर्मित व्यवस्था एक मिसाल हो सकती है। इसकी रोशनी में देश का ग्रामीण समाज अपनी राह ढूंढ सकता है। बिना सरकारी सहायता की बैसाखी के, बिना अफसरशाही की दया के। बस, जरूरत है तो गांव-गांव में ऐसी पहल करने की। हां, इसमें सरकारी सहायता मिल जाए तो इस प्रक्रिया को और बेहतर बनाया जा सकता है।

सेंटर फार साईंस एंड एनवायर्नमेंट
से मिली शोधवृत्ति पर आधारित।

*